अभिव्यक्ति

नजीर बने यह फैसला

दिल्ली में पटाखों पर सर्वोच्च अदालत की रोक

दिवाली पर पटाखों के इस्तेमाल को लेकर सुप्रीम कोर्ट ने सख्त रुख अपनाया है। सोमवार को अपने एक अहम फैसले में कोर्ट ने एक नवम्बर तक के लिए दिल्ली-एनसीआर में पटाखों की बिक्री पर रोक लगा दी है। मतलब यह कि इस बार दिवाली के लिए पटाखे नहीं बिकेंगे। आखिरकार लोगों के उत्साह से ज्यादा छोटे बच्चों की सेहत महत्वपूर्ण है और किसी की जिंदगी से खिलवाड़ की किसी को भी अनुमति नहीं दी जा सकती। ऐसे में देश की शीर्ष अदालत का यह फैसला काफी अहम है। हालांकि कुछ शर्तों के साथ इनकी बिक्री एक नवम्बर, यानी दिवाली के कोई दस दिन बाद फिर से की जा सकेगी। कोर्ट ने यह फैसला दिल्ली में लगातार बढ़ते वायु और ध्वनि प्रदूषण को ध्यान में रखकर किया है। अपने आदेश में कोर्ट ने कहा है कि इस प्रतिबंध के जरिए वह यह सुनिश्चित कर लेना चाहता है कि दिवाली से पहले पटाखों की बिक्री पर रोक से प्रदूषण में कमी आती है या नहीं? पटाखों की बिक्री पर प्रतिबंध की याचिका तीन बच्चों की ओर से दायर की गई थी, जिनके फेफड़े दिल्ली में प्रदूषण के कारण ठीक से विकसित नहीं हो पाए हैं। राजधानी में प्रदूषण का मसला कई सालों से लगातार उठ रहा है। तमाम निर्देशों और नियम-कानून बनने के बाद भी इसमें कमी नहीं आ रही है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के मुताबिक दिल्ली की हवा कुछ खास महीनों में सांस लेने लायक नहीं रहती। ऐसे वातावरण में रहने से सांस से जुड़ी बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है। पिछले साल दीपावली के बाद दिल्ली के कई इलाकों में प्रदूषण उच्चतम स्तर तक पहुंच गया था। बहरहाल, कोर्ट के इस आदेश से भी इस बात की गारंटी नही मिलती कि दिल्ली-एनसीआर के लोगों को पटाखों से मुक्ति मिल जाएगी। आदेश में पटाखा फोड़ने पर कोई बैन नहीं है। कोई बाहर से लाकर यहां पटाखे फोड़ सकता है। दिल्ली में पुलिस की नाक के नीचे कई गोरखधंधे चलते रहते हैं। उत्सव मनाने को लेकर तमाम नियम कब के बने पड़े हैं, पर व्यवहार में उनके दर्शन नहीं होते। ऐसे में पटाखा बिक्री पर लगा बैन कितनी सख्ती से लागू हो पाएगा, कहना कठिन है। जब तक पटाखे जलाने पर रोक नहीं लगती, तब तक स्थितियां शायद न बदलें। लेकिन ऐसी नौबत क्यों आनी चाहिए? क्यों न पूरा देश सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले को सुधार के एक बड़े संदेश के रूप में ले। होली में पहले जितनी अभद्रता अब दिल्ली-एनसीआर में नहीं दिखती। पटाखों के नुकसान समझकर क्यों न हम इनसे तौबा करें और दिवाली को शांत, झिलमिल रोशनियों का त्यौहार ही रहने दें, जैसी यह पच्चीस-तीस साल पहले तक हुआ करती थी। परंपरागत रूप से उत्साह, खुशियों और उमंग से त्यौहार को मनाने की बजाए अपना ऐश्वर्य दिखाने की अंधी दौड़ में तेज धमाकों वाले कानफोडू बम चलाने से जिस तरह से वायुमंडल में जहर घुलता है उसकी किसी को परवाह क्यों नहीं है! अत: न्यायालय की चिंता इस मसले पर जायज लगती है। सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला और राज्यों के लिए भी नजीर बनेगा तो यह जनहित में अच्छा ही रहेगा। जिस तरह मकर संक्रांति पर पतंग उड़ाते समय चाइनीज मांझे के दुष्परिणाम सामने आने के बाद न्यायालय को ही इस पर रोक लगानी पड़ी यह व्यवस्था पर भी गंभीर प्रश्नचिह्न खड़े करता है। क्योंकि मूक पक्षियों ही नहीं दुपहिया चलाते समय कई लोगों और छोटे बच्चों को तलवार की तेज धार की माफिक इस चाइनीज मांझे से अपनी जान गंवानी पड़ी तब भी न्यायालय को ही इसमें दखल देना पड़ा। ऐसे में कुछ पल की खुशी के बजाए दुधमुंहे बच्चों की जिंदगी बचाने के लिए पटाखों पर रोक सही ही कही जाएगी।

आखिरकार लोगों के उत्साह से ज्यादा छोटे बच्चों की सेहत महत्वपूर्ण है और किसी की जिंदगी से खिलवाड़ की किसी को भी अनुमति नहीं दी जा सकती। ऐसे में देश की शीर्ष अदालत का यह फैसला काफी अहम है। हालांकि कुछ शर्तों के साथ इनकी बिक्री एक नवम्बर, यानी दिवाली के कोई दस दिन बाद फिर से की जा सकेगी। कोर्ट ने यह फैसला दिल्ली में लगातार बढ़ते वायु और ध्वनि प्रदूषण को ध्यान में रखकर किया है।

झंझावतों से निखरा बिग बी का विराट व्यक्तित्व

पचहत्तर पर महानायक

डॉ. मिहिर पांड्या

हमारे महानायक अमिताभ ने बुधवार को अपना 75वां जन्मदिन मनाया। 2017 में खड़े होकर अमिताभ बच्चन के इस तकरीबन पचास साला फिल्मी करियर को देखना घाटी में खड़े होकर किसी विशाल पर्वत की चोटी पर नजर गड़ाने सरीखा मुश्किल काम है। बीते कितने ही सालों से वे अप्रतिम लोकप्रियता के शिखर पर हैं।

टेलीविजन ने उन्हें घर-घर पहुंचाया है और सत्तर के दशक का यह गुस्सैल 'एंग्री यंग मैन' आज हमारे घर परिवार के अपने किसी सम्मानित बुजुर्ग सा महसूस होता है। मेरी पीढ़ी के बच्चों ने उनका जवानी वाला गुस्सैल अवतार घिसी हुई वीडियो कैसेट्स पर और छोटे टीवी पर ही देखा, लाइव घटता हुआ नहीं, हमारे लिए वे ही मुख्यधारा थे महानायक। लेकिन थोड़ा विश्लेषण करने पर आप यह पाएंगे कि दरअसल अमिताभ का सिनेमाई उभार हिंदी सिनेमा की मुख्य धारा को हमेशा के लिए बदल देनेवाला था।

वे जरूरत से ज्यादा लंबे थे। इसे उनके नायक बनने में रुकावट माना गया। इसके चलते साथ काम करने को कोई नायिका नहीं मिलेगी, यह तक ताने की तरह कहा गया। लेकिन भविष्य उनका हुआ। मां-पिता और दोस्त-भाई के त्रिकोण में घूमते उनके सिनेमा ने नायिकाओं को ही हाशिए पर भेज दिया। उनकी आवाज को तय सांचों से अलग पाया गया था।

उन्होंने सिनेमा की दुनिया में आवाज के मानक ही बदल दिए। मैलोड्रामा और अति नाटकीयता से भरे हिंदी सिनेमा में वे अपने पुकारते हुए मौन और आंखों में भरे गुस्से से अभिनय का नया व्याकरण लिख रहे थे। सात हिंदुस्तानी के अंतर्मुखी, लेकिन भीतर अंगार भरे शायर अनवर अली से लेकर पिंक के निराश आदर्शवादी दीपक सहगल तक उनकी यह अभिनय यात्रा लोकप्रियता के दलदल में असंभव का संधान है।

इंग्लैंड के प्रधानमंत्री और विचारक विंस्टन चर्चिल ने कहा था, सफलता और कुछ नहीं, बस एक नाकामी से दूसरी नाकामी तक जरा भी जज्बे को खोए बिना चलते चले जाना है। जब हम महानायक अमिताभ के पांच दशकों में फैले अभिनय करियर को देखते हैं, तो उसमें हमें बहुत सारे टिमटिमाटे जगमग सितारे नजर आते हैं।

इसमें सबसे आगे सत्तर के दशक का उन्हीं के हमउम्र दो गुस्सैल युवाओं सलीम-जावेद का लिखा 'एंग्री यंग मैन' विजय है, जिसने उस दौर के मोहभंग को सिनेमाई अभिव्यक्ति दी। इसमें राजनीति के मोर्चे से वापस सिनेमा के परदे पर लौटा अभिनेता है, जिसकी चमक जरा धुंधली नहीं पड़ी। इसमें टेलीविजन के आगे हारते सिनेमा का अस्त होता हुआ सितारा है, जिसने उसी टीवी सेट को हथियार बनाकर अपनी खोई हुई महानायक की पदवी वापस हासिल की, करोड़पति स्टाइल में।

अमिताभ के व्यक्तित्व को केवल उनकी बुलंदियों से नहीं आंका जा सकता। उन्होंने अंधेरे को नजदीक से देखा है। जिस सत्ताधारी राजनीति से उनकी नजदीकियों के आजकल बड़े चर्चे होते हैं, अस्सी के दशक में उसी राजनीति की पिच पर उन्होंने अपने जीवन की सबसे बड़ी चोट खाई है।

गंभीर आरोप लगे। वे अकेले पड़े और उनकी जिंदगी के कुछ सबसे कीमती रिश्ते इसी राजनीति की पारी में स्वाहा हुए। वापस लौटे तो लोकप्रिय सिनेमा अपनी गर्त में था, उबर पाने की असफल कोशिश में अमिताभ के हिस्से 'जादूगर', 'तूफान', 'शहंशाह' और 'अजूबा' जैसी फिल्में ही आईं।

अभिनय से उनका दूसरा संन्यास भी कुछ सुखदायी नहीं रहा। आज जिस बाजार के वो सबसे बड़े और बिकनेवाले ब्रांड हैं, सच यह है कि भारतीय उदारीकरण के शुरुआती चरण में उसी बाजार ने उनके दोनों हाथ जलाए हैं। नब्बे के दशक में उनकी कंपनी एबीसीएल बड़ी उम्मीदों के साथ बाजार में उतरी। नए अभिनेताओं के साथ उनकी बनाई 'तेरे मेरे सपने' ने हमें अरशद वारसी और चंद्रचूड़ सिंह जैसे अभिनेता दिए।

टीवी पर वे 'देख भाई देख' जैसा जिंदादिल धारावाहिक को लेकर आए और भारत की धरती पर अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता 'मिस वर्ल्ड' को उतारा। लेकिन, रणनीतिक दांवपेंचों वाले अर्थ के खेल में यह अभिनेता फिर हारा, और उनके गहरे दोस्त भी साथ छोड़ गए। लेकिन बिग बी ने पूरे दमखम से सिनेमा के परदे पर वापसी की और अभिनय की ताकत से हारी हुई लड़ाई जीतनी चाही। लेकिन हिस्से फिर 'मृत्युदाता', 'मेजर साब' और 'लाल बादशाह' आईं।

वे फिर भी जीते। क्योंकि उन्होंने असफलताओं के पार देखना सीख लिया था। आज के इस सफल अमिताभ को देखकर लगता है कि जैसे इन बीते अंधेरों ने उनके मन में एक कभी ना मिटनेवाला कड़वापन भर दिया है। उन्होंने अपने चारों ओर आभा से भरा सुरक्षित घेरा बना लिया है, जिसने शायद उनके भीतर के प्रयोगशील रचनाकार को कुछ सीमित किया है।

वे मीडिया से खुलकर नहीं मिलते और सिनेमा के बाहर किसी भी विवादास्पद मुद्दे पर अपनी राय आसानी से सामने नहीं रखते हैं। उन्हें यथास्थितिवादी कहनेवाले कम नहीं। हां, सोशल मीडिया ने उन्हें वापस अपने दर्शकों से सीधे जोड़ा है। अपने शब्दों में वे अपने सबसे सहज रूप में दिखाई देते हैं। शायद पिताजी की याद है, जो उस मन के कड़वेपन को उनके शब्दों तक नहीं पहुंचने देती। यहीं उम्मीद की किरण है।

आज अमिताभ अपने जीवन के चतुर्थ प्रस्थान पर खड़े हैं। एक बार राजनीति और दूसरी बार व्यापार के चलते अभिनय से दूरी बना चुके अमिताभ इस तीसरी पारी में शुरू में कुछ लड़खड़ाए थे, लेकिन साल 2000 से लगातार फ्रंटफुट पर खेल रहे हैं।

अभी तो उन्होंने अपनी तीसरी इनिंग डिक्लेयर भी नहीं की है, और वे चमकदार सिनेमाई करियर की चौथी इनिंग जेब में लिए खड़े हैं। चौथी पारी, जो कठिन लेकिन खेल का सबसे रोमांचकारी और रचनात्मक हिस्सा होता है।

जो यहां जोखिम उठाता है, अमृत पाता है। इस उम्र में यह उनके लिए चुनिंदा काम का दौर है। एक सुरक्षित खेलने की भावना दिखाई पड़ती है, जब वे आर बाल्की, रामगोपाल वर्मा और प्रकाश झा जैसे परिचित निर्देशकों को रिपीट करते हैं।

लेकिन उनके भीतर का संभावनाओं से भरा कलाकार जूही चतुर्वेदी और रितेश शाह की लिखी एवं शुजित सरकार और अनिरुद्ध राय चौधरी निर्देशित 'पीकू' और 'पिंक' जैसी फिल्मों में उभरकर आता है। ये फिल्में सबूत हैं कि अमिताभ के लिए यही समय है कि वे खुद को परिचित के घेरे में ना बांधें और नए लोगों की अद्भुत नवेली कल्पनाओं से भरी सोच को परदे पर अपने धड़कते अभिनय के जरिए जिंदा कर दें.!

टेलीविजन ने उन्हें घर-घर पहुंचाया है और सत्तर के दशक का यह गुस्सैल 'एंग्री यंग मैन' आज हमारे घर परिवार के अपने किसी सम्मानित बुजुर्ग सा महसूस होता है। मेरी पीढ़ी के बच्चों ने उनका जवानी वाला गुस्सैल अवतार घिसी हुई वीडियो कैसेट्स पर और छोटे टीवी पर ही देखा, लाइव घटता हुआ नहीं, हमारे लिए वे ही मुख्यधारा थे महानायक। लेकिन थोड़ा विश्लेषण करने पर आप यह पाएंगे कि दरअसल अमिताभ का सिनेमाई उभार हिंदी सिनेमा की मुख्य धारा को हमेशा के लिए बदल देनेवाला था। वे जरूरत से ज्यादा लंबे थे। इसे उनके नायक बनने में रुकावट माना गया। इसके चलते साथ काम करने को कोई नायिका नहीं मिलेगी, यह तक ताने की तरह कहा गया। लेकिन भविष्य उनका हुआ। मां-पिता और दोस्त-भाई के त्रिकोण में घूमते उनके सिनेमा ने नायिकाओं को ही हाशिए पर भेज दिया। उनकी आवाज को तय सांचों से अलग पाया गया था।